विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	**P3: कथेतर साहित्य**
इकाई सं. एवं शीर्षक	**M23 : 'आवारा मसीहा' लेखकीय संघर्ष के शिखर**
इकाई टैग	**HND_P3_M23**

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**प्रो. सूरज पालीवाल** अध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : surajpaliwal@yahoo.com
इकाई लेखक	**प्रो. सूरज पालीवाल** अध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : surajpaliwal@yahoo.com
इकाई समीक्षक	**डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित** प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र) ईमेल : suryadixit123@gmail.com
भाषा संपादक	**प्रो. सूरज पालीवाल** अध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : surajpaliwal@yahoo.com

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. आरंभिक जीवन संघर्ष
4. अमर कथा शिल्पी
5. जीवनी का वैशिष्ट्य
6. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप-

- शरत् चंद्र किस तरह की परिस्थितियों में लेखक बने यह जान सकेंगे.
- शरत् को 'स्त्री जीवन का चितेरा' कहने का आशय जान सकेंगे.
- शरत् की दृष्टि में लेखक के लिये अनुभवों की अनिवार्यता को जान सकेंगे.
- शरत् 'आवारा मसीहा' कैसे बने यह जान सकेंगे.

2. प्रस्तावना

शरत् चंद्र के 57वें जन्म दिन पर बंग महिलाओं ने उनका अभिनंदन करते हुये कहा "पराधीन देश के अधःपतित समाज की असहाया अंतःपुरचारिणियों के हृदय की मूक आनंद वेदना को तुमने भाषा में मूर्ति कर दिया है। उनके दुर्गतिपूर्ण जीवन के सुख-दुखों की सभी अनुभूतियों को निविड़ सहानुभूति में ढालकर तुमने साहित्य में सत्य करके प्रत्यक्ष करा दिया है। तुम्हारी अनाविष्ट दृष्टि, सूक्ष्म पर्यवेक्षण-सामर्थ्य, सुगंभीर उपलब्धि, शक्ति तथा विचित्र मानव-चरित्र की अतलस्पर्शी अभिज्ञता ने निखिल नारी चित्र की निगूढ़ प्रकृति का गुप्ततम पता पा लिया है। हे नारी-चरित्र के परम रहस्यज्ञाता, हम लोग तुम्हारी वंदना करती हैं।" बंग महिलाओं ने यह अभिनंदन इसलिये किया कि शरत् ने अपने उपन्यासों में स्त्री जीवन के दारुण दुखों को बहुत ही मार्मिक ढंग से निरूपित किया है। यह विडंबना ही है कि शरत् जीवन भर स्त्री की उपस्थिति और उसके प्रति असीम स्नेह के कारण अपने आसपास के परिवेश की उपेक्षा सहते रहे। समाज के पाखंड से दूर वे जो अनुभव करते थे, वह करते और कहते थे। समाज को उनका यह रूप पसंद नहीं था। इसलिये उन पर तमाम तरह के आरोप लगाये जाते रहे पर शरत् ने इन आरोपों का कभी उत्तर नहीं दिया और न इन आरोपों के कारण उन्होंने अपना मार्ग ही बदला। इस दृढ़ता ने उन्हें बंगला भाषा का सर्वश्रेष्ठ कथाकार बनाया। कहना न होगा कि बहुमुखी प्रतिभा के धनी रवींद्रनाथ टैगोर का समकालीन होना भी शरत् के लिये एक चुनौती ही थी। यह चुनौती जीवन भर बनी रही। इसलिये शरत् कहा करते थे कि मेरे अलावा इतनी अच्छी कहानी कविगुरु ही लिख सकते हैं। कविगुरु ने भी उनकी प्रतिभा को पहचान कर ही लिखा था 'वह नवीनतम नेता, जिसने मुक्ति के मार्ग के द्वारा बंगाली उपन्यास को आधुनिक विश्व साहित्य की भावना के पास लाने का कार्य किया है, शरत् चंद्र है। उन्होंने हमारी भाषा को नई शक्ति दी है। अपनी कहानियों में उन्होंने बंगाली हृदय को नई दृष्टि के प्रकाश से आलोकित किया है। उन्होंने जनता के व्यक्तित्व की छिपी हुई साधारण बातों के जीवंत महत्व को प्रकट किया है। उन्होंने एक उपन्यासकार के लिये जो सर्वोत्तम पारितोषिक हो सकता है पा लिया है। उन्होंने संपूर्ण रूप से बंगाली पाठकों का हृदय जीत लिया है।' कविगुरु का यह कथन शरत् की बहुमुखी प्रतिभा और कथा साहित्य में उनके अपूर्व योगदान को रेखांकित करता है।

3. आरंभिक जीवन संघर्ष

शरत् चंद्र का जन्म बंगाल के एक साधारण से गांव देवानंदपुर में 15 सितंबर, 1876 को हुआ था। उनके पिता मोतीलाल स्वप्नजीवी थे। संसार के यथार्थ से उनका कोई लेना-देना नहीं था। मोतीलाल के पिता बैकुंठनाथ भी आदर्शवादी थे। उन्होंने क्रूर और अत्याचारी जमींदार के पक्ष में गवाही देने से साफ इंकार कर दिया जिससे नाराज होकर जमींदार ने उनकी हत्या करा दी थी। तब मोतीलाल बहुत छोटे थे। उनकी मां ने शिशु पुत्र को गोदी में चिपटा-छुपाकर बड़ा किया था जिसके कारण उन्हें जमीनी यथार्थ का सामना नहीं करना पड़ा। घर गृहस्थी की सारी जिम्मेदारी शरत् की मां निभाती थी। निश्चित आर्थिक स्त्रोत न होने के कारण घर की स्थिति अच्छी नहीं थी। इसलिये शरत् का बाल्यकाल अत्यधिक अभावों में व्यतीत हुआ। 'मां न जाने कैसे गृहस्थी चलाती थीं। जानती थीं

पति कैसे हैं ? उनसे शिकवा-शिकायत व्यर्थ है। सार्थक यही है कि घर की शोभा बनी रहे। उन्होंने न कभी गहनों की मांग की, न कीमती पोशाक की ही। आत्मोत्सर्ग ही मानो उनका दाय था।' शरत् के उपन्यासों में मां के जो उदात्त चरित्र मिलते हैं वे सब अपनी मां भुवनमोहिनी के ही प्रतिरूप हैं। उन्होंने मां के इस ऋण को जीवन-भर अनेक रूपों में स्वीकार किया था। शरत् जब पांच वर्ष के हुये तब उन्हें गांव के ही प्यारी (बंदोपाध्याय) पंडित की पाठशाला में भर्ती कर दिया गया। बचपन में वे बहुत शरारती थे इसलिये पाठशाला में ऐसा कोई दिन नहीं जाता जब उनकी शिकायत न होती हो। पंडित जी क्रोधी तो थे ही साथ ही शरत् की शरारतो से भी वे परेशान थे। एक दिन 'क्रोध से कांपते हुये पंडितजी शरत् के घर पहुंचे। उसकी कहानी सुनकर मां के क्रोध का भी ठिकाना न रहा। घर लौटने पर उसने शरत् को खूब पीटा। बीच-बीच में अपने कपाल पर भी हाथ मारकर कहती, क्या करेगा यह लड़का ? कैसे चलेगा इसका काम?' एक तो पति के कुछ काम न करने के कारण घर की बदहाली तथा दूसरे बेटे की आवारगी के कारण उन्हें चिंता थी कि उनका वर्तमान और भविष्य दोनों ही कष्टमय हैं। एक दिन जब बहुत परेशान थीं तो उनकी सास ने समझाते हुये शरत् के लिये कहा 'एक दिन इसकी मति लौट आयेगी। और यह बहुत बड़ा आदमी होगा। मैं वह दिन देखने के लिये नहीं रहूंगी, लेकिन तू देख लेना, मेरी बात झूठ नहीं होगी।'

शरत् का आरंभिक बचपन अपने गांव देवानंदपुर में बीता फिर वे मां के साथ अपनी ननिहाल भागलपुर चले गये और बारह वर्ष की अवस्था में फिर अपने गांव लौट आये। देवानंदपुर और भागलपुर की यादें उनके मन को मथ रही थीं। ननिहाल सम्पन्न थी और नाना केदारनाथ आदर्शवादी। लेकिन छोटे नाना अमरनाथ पर नवयुग की हवा का प्रभाव पड़ चुका था। शरत् को बंकिमचंद्र के 'बंगदर्शन' से परिचय उन्हीं के माध्यम से हुआ था। 'बंगदर्शन' में ही कविगुरु की युगांतरकारी रचना 'आंख की किरकिरी' प्रकाशित हुई थी जिसे पढ़कर शरत् को अतीव आनंद की अनुभूति हुई थी। कुछ समय के लिये वह अपने दुखों को भूलकर उसी में खोया रहा था। शरत् के समक्ष एक ओर घर के अभाव थे, बौध्दिक प्रखरता के बावजूद पढ़ने में मन नहीं लग रहा था, संग-साथ जिन लोगों का था वे सब शरारती थे इसलिये शरारत करने और दूसरों को चिढ़ाने-परेशान करने में आनंद आता था तो दूसरी ओर ननिहाल पक्ष की बहुविध दुनिया को देखकर उनका मन कुछ देर के लिये देवानंदपुर से भागलपुर में विचरण करने लगता था। वे सोच नहीं पा रहे थे कि जीवन का रास्ता किधर से जाना चाहिये। साहित्य में उनका मन सबसे अधिक लगता था। अपने पिता की अधूरी कहानियों को उन्होंने पढ़ लिया था, जिन्हें पूरा करने की जिद भी उनके मन में उठने लगी थी। लेकिन आर्थिक कष्ट लगातार बढ़ते जा रहे थे। मां और पिता की मृत्यु के बाद वे और अकेले पड़ गये थे। घर में छोटे भाई तथा बहन का दायित्व निभाने में वे असफल हो रहे थे। पारिवारिक दायित्व के प्रति वे सजग थे लेकिन मन पढ़ने लिखने में लगता था। इन दोनों स्थितियों में सामंजस्य बैठा पाना उनके लिये कठिन था। उन्होंने निश्चय किया और जीविका अर्जन के लिये 26 वर्ष की आयु में बर्मा चले गये। रंगून में उनके मौसा अघोरनाथ बड़े वकील थे। वे चाहते थे कि शरत् भी पढ़कर अच्छा वकील बने लेकिन नियति को यह स्वीकार नहीं था। जीवन की अनेक असफलताएं शरत् की प्रतीक्षा करती रहती थीं। वे जो चाहते थे वह होता नहीं था और जिसे नहीं चाहते थे वह उनके गले पड़ता था। ऐसी ही अनेक घटनाओं ने शरत् के जीवन का निर्माण किया था। वे मन से बहुत भावुक थे, अपनी मां की तरह किसी का दुख देखकर वे उसके प्रति अपनी स्थिति से अधिक सहायता करते थे। उनके अभावों और उपेक्षाओं का एक बड़ा कारण उनकी भावुकता भी है। भावुकता के कारण एक ओर उन्हें अपार कष्ट झेलने पड़े तो दूसरी ओर एक बड़े कथाकार की आधार भूमि भी इन्हीं अयाचित संकटों ने निर्मित की। रंगून छोड़कर कलकत्ता आने तक 'वह प्रायः अंधकार में छिपा रहा, पर इसी अवधि में उसने अपने आपको उस जीवन के लिये तैयार कर लिया जो उसे प्रसिध्दि के शिखर पर ले जाने वाला था। एक कृतिकार के लिये मानव का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है

और सर्वहाराओं के बीच में रहते हुये वह यही करता रहा। अपने को उनके साथ पूर्ण रूप से एकाकार करके उसने उनकी भावनाओं का अध्ययन किया था और अपने जीवन के उद्देश्य की दिशा को खोज लिया था।'

कलकत्ते में शरद 26 वर्ष तक रहे लेकिन परेशानियों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। छब्बीस वर्ष की युवावस्था में वे रंगून जीविका और निश्चिंत जीवन के लिये गये थे पर वहां भी उनका दुर्भाग्य उनके साथ ही गया था। 1907 की नवंबर में हाइड्रोसील का आपरेशन कराने के लिये छः माह तक कलकत्ते में रहे पर मिले किसी से नहीं। बर्मा के जीवन के किस्से उनसे पहले कलकत्ता पहुंच चुके थे। बर्मा लौटकर अपने मित्र विभूतिभूषण भट्ट को एक लंबे पत्र में उन्होंने अपने मन की व्यथा उड़ेलते हुये लिखा 'कैसा दुर्भाग्यपूर्ण है जीवन मेरा! कैसे अर्थहीन, निष्फल, नीरस दिन, मास, वर्ष सिर पर से गुजर जाते हैं, सोच नहीं पाता। भगवान ने जब बुध्दि दी थी तो थोड़ी सुबुध्दि भी दे सकते थे। नहीं दी तो इतना प्यार करना क्यों सिखाया ? प्यार करने के लिये एक पात्र मुझे भी दे देते तो क्या उनके विश्व में मनुष्यों की कमी पड़ पाती? नहीं जानता यह उनका कैसा न्याय है? सोचता हूँ जो मेरे आत्मीय बंधु-बांधव हैं उन सभी का मैं घृणा का पात्र हूं। इस बात का ज्ञान कितना मर्मान्तक है, यह बताने पर भी लोग विश्वास नहीं करेंगे। जानता हूं, विश्वास करने का कोई मार्ग ही मैंने नहीं छोड़ा है। चिर प्रवासी, दुखी, कुत्सित, आचार वाला, मैं किसी के सामने आने के योग्य नहीं हूं।' यह आत्मबोध शरत् के मन को कितना दुखी करता होगा इसकी बानगी उनके उपन्यास 'श्रीकांत' और 'चरित्रहीन' में देखने को मिलती है। शरत् ने जानबूझकर ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिसका उत्तर उन्हें देना पड़े पर स्थितियों ने आजीवन इस तरह घेरे रखा कि वे उनसे मुक्त भी नहीं हो पाये। पर इस बेचैनी के बिना क्या शरत् बंगला भाषा के इतने बड़े कथाशिल्पी बन सकते थे ? अभावों, उपेक्षाओं और अस्थिरताओं ने ही शरत् के कथाकार का निर्माण किया था। तभी तो उन्होंने आत्मकथा लिखने के गुरुदेव के आदेश का उत्तर देते हुये कहा था 'गुरुदेव, यदि मैं जानता कि मैं इतना बड़ा आदमी बनूंगा तो मैं किसी और प्रकार का जीवन जीता।' यह सहज उत्तर है लेकिन इसकी व्यंजना बहुत सारे अर्थ खोलती है।

4. अमर कथा शिल्पी

बर्मा जाने के लगभग चार वर्ष बाद शरत् की कहानी 'बड़ी दीदी' चर्चित पत्रिका 'भारती' के अप्रैल-मई, 1907 में प्रकाशित हुई थी। इसे पढ़कर लोगों ने समझा कि यह कहानी रवींद्रनाथ टैगोर ने छद्म नाम से लिखी होगी। उनसे पूछा तो उन्होंने साफ मना किया लेकिन लोगों को चैन नहीं था। उन्होंने टैगोर को कहानी पढ़वाई। उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं था। उन्होंने कहा 'सचमुच रचना बड़ी चमत्कारपूर्ण है। लेकिन, मेरी नहीं है किसी दूसरे व्यक्ति की है। पर जिसकी भी हो वह असाधारण रूप से शक्तिशाली लेखक है। कुछ भी करो, उसका पता लगाओ। उसे पकड़ लाओ, बंगाल में उसके जोड़ का लेखक नहीं मिल सकता।' बंगला भाषा में रवींद्रनाथ टैगोर असाधारण कवि थे शरत् के कथाकार को उनकी स्वीकृति अर्थ रखती थी। लेकिन शरत् रंगून में सौ रुपये की क्लर्की करते हुये जिस प्रकार का जीवन जी रहे थे, उसमें इस प्रसिध्दि का कोई अर्थ नहीं था। वे अपनी प्रतिभा से अनजान थे, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता लेकिन उसका सदुपयोग नहीं कर रहे थे। कलकत्ता में उनके जितने भी मित्र थे, वे सब उन्हें लगातार लिखने के लिये प्रोत्साहित कर रहे थे, उस समय की साहित्यिक पत्रिकाएं उन्हें प्रकाशित करने के लिये दबाव बना रही थीं लेकिन शरत् अपनी तरह से इन पर ध्यान नहीं दे रहे थे। अपने रंगून प्रवास में वे जिस प्रकार सर्वहारा-वर्ग के निकट रहकर जीवन के यथार्थ को देख और अनुभव कर रहे थे, वह सब उनके लेखन का आधार तैयार कर रहा था। लगभग तेरह वर्ष वे बर्मा में रहे और 1916 में जब कलकत्ता लौटे तब वे 39 वर्ष के हो चुके थे। अपने जीवन का दो तिहाई भाग वे पूरा कर चुके थे। कलकत्ता पहुंचने से पहले उनकी कहानियां प्रकाशित और प्रशंसित हो चुकी थीं। 'चरित्रहीन' तथा 'देवदास' का सृजन हो चुका था। अब उन्हें यह विश्वास हो गया था कि बंगला में रवींद्रनाथ के बाद

वे ही बड़े लेखक हैं। प्रमथ को उन्होंने लिखा 'प्रमथ, एक अहंकार की बात कहता हूं। माफ करना, यदि करो तो कहूं। मुझसे अच्छे उपन्यास और कहानी रवि बाबू को छोड़कर और कोई नहीं लिख सकेगा। जब यह बात समझ लो, उसी दिन मुझसे लिखने के लिये कहना, उससे पहले नहीं।' तथा अपने मामा उपेंद्रनाथ को और भी स्पष्ट शब्दों में लिखा 'मुझसे अच्छा मर्मज्ञ आज के युग में एक रवि बाबू को छोड़कर और कोई नहीं है। यह मत सोचना कि मैं गर्व कर रहा हूं। लेकिन मेरी निर्भरता कहो, चाहे गर्व ही कहो, मेरी धारणा यही है।' यह धारणा बंग समाज की स्वीकृति के बाद ही पुख्ता हुई थी इसलिये यह अहं की अभिव्यक्ति नहीं है। कविगुरु शरत् के लिये हमेशा चुनौती बने रहे, हर रचना में वे रवि बाबू से आगे जाना चाहते थे, वे चाहते थे कि टैगोर की जहां सीमा है उससे आगे जाकर वे ऐसा कुछ लिखें कि लोगों के मन को छुये। अपने दो तिहाई जीवन में उन्होंने जिस प्रकार की उपेक्षा झेली थी, उसने उन्हें उन लोगों के निकट खड़ा किया जो जीवन संघर्ष में पिस रहे थे। शरत् अपनी पूरी संवेदना के साथ उनके साथ रहे इसलिये जीवन यथार्थ का जो रूप उनके यहां मिलता है, वह दूसरा किसी के यहां नहीं। बंग समाज की इस विशिष्ट अभिव्यक्ति और उपस्थिति से चकित होकर ही उनकी षष्टिपूर्ति के अवसर पर कविगुरु ने अपने मन की बात करते हुये कहा 'आज शरच्चंद्र के अभिनंदन में विशेष गर्व अनुभव करता, यदि मैं उनको यह कह सकता कि तुम नितांत मेरे द्वारा आविष्कृत हो। किंतु उन्होंने किसी के हस्ताक्षरित परिचय-पत्र की अपेक्षा नहीं की। आज उनका अभिनंदन देश के घर-घर में स्वतः ही उच्छ्वसित हुआ है। उन्होंने बंगाली वेदना के केंद्र में अपनी वाणी का स्पंदन पैदा किया है। साहित्य में उपदेष्टा से स्त्रष्टा का आसन बहुत ऊंचा है। चिंताशक्ति का वितर्क नहीं, कल्पना-शक्ति की पूर्ण दृष्टि ही साहित्य में शाश्वत मर्यादा के पद पर प्रतिष्ठित है। कवि के आसन से मैं विशेष रूप से उसी स्त्रष्टा शरच्चंद्र को माला अर्पण करता हूं। वे शतायु होकर बंगला साहित्य को समृध्द करें।' प्रायः दो समकालीनों में परस्पर ईर्ष्या होती है जो एक समय तक रविबाबू और शरत् में थी लेकिन धीरे-धीरे दोनों ने एक दूसरे के वैशिष्ट्य को पहचाना और उसे सार्वजनिक रूप से स्वीकृत भी किया। यही कारण है कि शरत् उन्हें अपना गुरु मानते थे और रविबाबू उन्हें बंग समाज की निगूढ़तम वेदना की अभिव्यक्ति का कथाकार।

5. जीवनी का वैशिष्ट्य

'आबारा मसीहा' के जीवनीकार विष्णु प्रभाकर ने लिखा है 'जीवनी क्या है? अनुभवों का श्रृंखलाबध्द कलात्मक चयन। इसमें वे ही घटनाएं पिरोई जाती हैं, जिनमें संवेदना की गहराई हो, भावों को आलोड़ित करने की शक्ति हो। घटनाओं का चयन लेखक किसी नीति, तर्क या दर्शन से प्रभावित होकर नहीं करता। वह गोताखोर की तरह जीवन-सागर में डूब-डूब कर मोतियां चुनता है। सशक्त और सच्ची संवेदना की हर घड़ी वही मोती है। श्रेष्ठ जीवनी-लेखक काल, देश, व्यक्ति और घटना की सीमाओं को तोड़कर अनुभूतियों का सौंदर्य में विक्षेपण करता है। विशुध्द कला और मानदंडों के बीच संतुलन और सामंजस्य का प्रणयन करता है।' जीवनी लेखन कठिन और दुस्साध्य कार्य है। इसके प्रणयन में एक ओर लेखक की प्रसिध्दि का मानक तो दूसरी ओर जनश्रुति की प्रामाणिकता रहती है। जीवनीकार दोनों की उपेक्षा कर आगे नहीं बढ़ सकता। शरत् की जीवनी इसलिये भी कठिन है कि बंगाल में जितने लोग उनके लेखन के दीवाने हैं उससे कम उनके जीवन के प्रति हिकारत भाव रखने वाले भी नहीं हैं। उनका आरंभिक जीवन तो तमाम तरह के कष्टों में बीता लेकिन बाद का जीवन भी बहुत योजनाबध्द तरीके से नहीं जिया। इसलिये उनके बारे में तमाम तरह के प्रतिवाद समाज में फैले हुये थे, जिनका प्रतिकार वे अक्सर नहीं करते थे। वे मानते थे कि 'एक दिन मैं नहीं रहूंगा, तुम भी नहीं रहोगे। लोग मेरे व्यक्तिगत जीवन के बारे में जानने की इच्छा नहीं करेंगे। तब यदि कोई मेरी लिखी हुई रचना बची रहेगी तो वे उसी को लेकर चर्चा करेंगे, मेरे चरित्र को लेकर नहीं।' यह कुछ सीमा तक तो सही है लेकिन जीवनीकार के लिये यह असंभव है क्योंकि जीवन तो जीवन ही होता है उसे बहुत पवित्रता के साथ नहीं जिया जा सकता। जो लोग अत्यधिक पवित्रता का आग्रह पालते हैं वे उन जीवन अनुभवों से वंचित रह

जाते हैं जो एक बड़े लेखक की पूंजी होती है। शरत् अपनी इसी पूंजी के बल पर बड़े लेखक बने थे। उनके यहां जिस प्रकार के पात्र आते हैं, वे सब कुलीन या कुलीनता का आवरण ओढ़े हुये नहीं है, वे सब सामान्य और अति सामान्य पात्र हैं शरत् उनके दैनंदिन जीवन के हिस्सा थे। विष्णु प्रभाकर ने उनके चरित्र के बारे में फेले प्रतिवादों के बारे में लिखा है 'शरद बाबू के चरित्र को लेकर समाज में जो भ्रांत धारणा बन गई थी, उसकी चर्चा करना असंगत न होगा। कलाकार का चरित्र साधारण मानव से किसी न किसी रूप में भिन्न होता ही है। फिर शरद बाबू तो बचपन से ही अभाव और अपमान के उस वातावरण में जिये जहां आदमी या तो विद्रोह कर सकता है या आत्महत्या। उनके अंतर में जो साहित्यकार सोया पड़ा था, उसने उन्हें पहला मार्ग अपनाने की ही प्रेरणा दी। इसलिये उन्होंने तत्कालीन समाज के कठोर विधि-विधान को मानने से इंकार कर दिया। सदाचार के प्रचलित मानदंडों पर चोट करते हुये उन्होंने वही किया जो यथास्थितिवादी मुखियाओं के लिये अकरणीय था। तब वे चरित्रहीन का विरुद्ध न पाते तो आश्चर्य ही होता।'

लोग उनके बारे में कुछ भी कहते रहें पर वे अपने बारे में निश्चिंत थे इसलिये कहा करते थे 'मेरा जीवन अंततः मानो एक उपन्यास ही है। इस उपन्यास में सब कुछ किया, पर छोटा काम कभी नहीं किया। जब मरूंगा निर्मल खाता छोड़ जाऊंगा। उसके बीच स्याही का दाग कहीं भी नहीं होगा।' स्त्री साहचर्य के लिये वे जितने बदनाम थे उसके लिये उन्होंने लिखा 'नारी जाति के संबंध में मैं कभी उच्छृंखल नहीं था और अब भी नहीं हूं।' यह उनके चरित्र की दृढ़ता है इसलिये सामान्य नारियों ने तो उनका अभिनंदन किया ही था वेश्याएं भी उन्हें दादा ठाकुर मानकर सम्मान करती थीं। शरत् के यहां किसी प्रकार का दिखावा नहीं था, कोई पाखंड नहीं था बल्कि कई बार तो वे लोगों को चिढ़ाने के लिये वह सब करते थे जो संभ्रांत समाज में करणीय नहीं होता था। इसमें उन्हें आनंद आता था। वे ऊंचे दर्जे के किस्सागो तथा बैठकवाज थे। एक किस्से को वे कई रूपों में सुनाते थे और कहा करते थे कि किस्सा मेरा है इसलिये मेरी इच्छा मैं जिस रूप में सुनाऊं। उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया जिससे उनकी आत्मा को कष्ट हो और समाज में अनीति का प्रसार हो 'मैंने अनीति का प्रचार करने के लिये कलम नहीं पकड़ी। मैंने तो मनुष्य के अंतर में छिपी हुई मनुष्यता को, उस महिमा को, जिसे सब नहीं देख पाते, नाना रूपों में अंकित करके प्रस्तुत किया है।' विष्णु प्रभाकर ने कठोर परिश्रम से शरत् के जीवन की विसंगतियों में से उस महान कथाकार को खोज निकाला है जिसकी कलम ने मनुष्यता के मानदंड निर्धारित किये थे। जो रवींद्रनाथ टैगोर जैसे बरगद के नीचे भी बड़ा वृक्ष बना।

6. निष्कर्ष

विष्णु प्रभाकर ने बंगला साहित्य के अमर शिल्पी शरत् चंद्र की जीवनी लिखकर कथाकार के अंतर और बाहर को रेखांकित किया है। महान कथाकारों का जीवन सामान्य नहीं होता, वे जिन अभावों और उपेक्षाओं से निकलकर जीवन के चित्र अंकित करते हैं उन चित्रों में न केवल अपना समय बल्कि पूरी जातीय परंपरा होती है। शरत् ने बंगला साहित्य व उसी जातीय परंपरा को नया रूप देने का कार्य किया था जो बंकिम और रविबाबू ने अपने महान लेखन से स्थापित की थी। कहा जाता है कि बंकिम का विकास रवींद्रनाथ में है तो रवींद्रनाथ का विकास शरत् में। इस महत्वपूर्ण कार्य को करने का जिम्मा उनके जीवनीकार विष्णु प्रभाकर बहुत गंभीरता के साथ निभाया है इसलिये 'आवारा मसीहा' केवल जीवनी ही नहीं है बल्कि औपन्यासिक जीवनी है।